



International Journal of Innovations in Liberal Arts



DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.14028470>

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उपनिषदों की उपादेयता

Akhilesh Kumar Tripathi

Amity School of Liberal Arts
Amity University Haryana, India

Received: JUL. 24 2024

Accepted: AUG. 12, 2024

Published: SEP. 31, 2024

सारांश: निष्कर्षतः सम्पूर्ण भारत वर्ष में समान रूप से निहित भाषा संस्कृत है जिसका भारत की समस्त भाषाओं के साथ मातृवत सम्बन्ध है। अतः भारतीय संस्कृति के उत्थान में संस्कृत भाषा एवं वैदिक कालीन औपनिषदिक शिक्षा का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विशेष योगदान है। जिसके द्वारा हम आधुनिक शिक्षा एवं जीवन शैली दोनों को परिवर्तित कर सुपथ गामी हो सकते हैं।

कूटशब्द: संस्कृत भाषा, उपनिषद्, आत्मवित, मन्त्रवित, छान्दोग्योपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, केनोपनिषद्

प्रस्तावना : भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। वैदिक साहित्य निखिल ज्ञान-विज्ञान की अक्षय निधि है। अतः भारतीय सभ्यता-संस्कृति के सम्पूर्ण पक्षों के परिज्ञान के लिए वेदों एवं उपनिषदों का अध्ययन-अध्यापन एवं चिन्तन-मनन नितान्त आवश्यक है। विषयवस्तु की दृष्टिकोण से वैदिक साहित्य के तीन प्रमुख प्रतिपाद्य हैं-कर्म, उपासना, तथा ज्ञान। कर्म का प्रतिपादन मुख्यतया ब्राह्मण ग्रन्थों में और उपासना का मुख्यतः आरण्यकों में हुआ है, तो ज्ञान का प्रतिपादन उपनिषदों की प्रमुख विशेषता है।

उपनिषद् कालीन शिक्षा

वैदिक वाङ्मय में उपनिषद् विशिष्ट शिक्षानिधि के रूप में मान्य हैं। उपनिषद् शब्द ही प्रकट करता है कि इनमें उस गहन आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या का विवेचन है जो तत्त्वद्रष्टा आचार्यों के सानिध्य में ही अधिगत

की जा सकती है।¹ किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि उपनिषद् स्वाध्याय पर अधिक बल देते हैं।² स्वाध्याय को और अध्यापन को ब्रह्मयज्ञ³ का नाम देते हैं तथा शिक्षा को साध्य नहीं अपितु ब्रह्मवर्चस का साधन ही प्रतिपादित करते हैं। वस्तुतः औनिषदिक शिक्षण पद्धति का ही प्राधान्य था- शिक्षार्थी की जिज्ञासा को अधिक महत्त्व दिया जाता था, गुरु का भाषण उसके समाधान हेतु ही होता था, यद्यपि उस युग में गुरु का महत्त्व कम नहीं आका गया, गुरु को देवतुल्य⁴ मानने का सन्देश उपनिषदों में ही सर्वप्रथम मिलता है। मुण्डक एवं छान्दोग्य उपनिषदों में स्पष्ट निर्देश है कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता है।⁵ यही बात तैत्तिरीय उपनिषद् ने 'आचार्य देवो भव' इस दीक्षान्त वाक्य में प्रकट की है।⁶ दूसरी ओर शिक्षार्थी की पात्रता एवं योग्यता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है – शिष्य के लिए गुरु गृहवास अनिवार्य था।⁷ गुरु उपदेश से अपने अधिक आचार से प्रभावित करता था तथा शिष्य को गुरु के लिए भिक्षावृत्ति⁸ का भी आश्रय लेना पड़ता था और गुरु के कुल की अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए समिधायें लाना तथा पशुपालन, भी उसके कर्तव्य थे। उपनिषद्कालीन ऋषियों ने इस सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक सत्य का भली भाँती साक्षात्कार कर लिया था, इसलिए कहा गया कि जिसका चित्त शान्त न हो⁹ जो दान्त उपरत एवं समाहित न हो- वह शिक्षा का अधिकारी नहीं है न ही अपुत्र और अशिष्य इस ज्ञान के पात्र हैं। परवर्ती काल में सूक्तिकारों ने भी इसी तथ्य को सम्पुष्ट करते हुए कहा है कि जो सुख चाहता है, उसे विद्या कैसे मिल सकती और जो विद्या का इच्छुक है, उसे सुख कहाँ¹⁰ शिक्षा के इस आदर्श की आज के सुविधाभोगी शिक्षक एवं शिक्षार्थी में कल्पना भी नहीं की जा सकती।

वस्तुतः उपनिषद् आत्मज्ञान-प्रतिपादक ग्रन्थ हैं, अतः उनमें आचार्य एवं शिष्य दोनों के लिए कठोर अनुशासन पर बल दिया गया है। यह अनुशासन बाह्य एवं शारीरिक भी है तथा आन्तरिक एवं नैतिक भी वस्तुतः उपनिषदों में ब्रह्मचर्य केवल विद्यार्थी जीवन तक सीमित नहीं है, अपितु चारों आश्रमों में इसका अभ्यास एवं साधना विहित है।¹¹ केनोपनिषद् में तप, दम एवं कर्म को ज्ञान की प्रतिष्ठा कह कर यही तथ्य व्यक्त किया गया है¹² तो कठ उपनिषद् भी तप एवं ब्रह्मचर्य को ज्ञान का साधन निर्धारित करता है

1 आचर्याद्विव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति | छान्दोग्य 1/2/8

2 तैत्तिरीय उप. शिक्षावल्ली

3 तैत्तिरीय आरण्यक, 2/9-15

4 तैत्तिरीय उप. शिक्षावल्ली

5 मुण्डक 1/2/3 एवं छान्दोग्य 4/9/3

6 तैत्तिरीय उप. शिक्षावल्ली

7 आचार्य कुलवासिन छन्दो. 02

8 छान्दोग्य 4/3/5

9 न प्रशान्ताय दातव्यम् .. श्वेताश्वतर. 6 / 22

10 सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखं |

11 बृहदारण्यक 4/4 /22

12 तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा |

वेदाः सर्वज्ञानि सत्यमायतनम् || केन. 4 / 8

[13 इसी भांति, मुण्डक उपनिषद् मे भी तप, श्रद्धा, सत्य ब्रह्मचर्य एवं विधि के पालन का आदेश है¹⁴ या प्रश्नोपनिषद् भी तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा पर बल देता है |¹⁵ छान्दोग्य उपनिषद् भी तप, ब्रह्मचर्य आदि नैतिक मूल्यों का अभ्यास शिक्षा के लिए अनिवार्य माना गया, साथ ही आचार्य एवं शिष्य के लिए सात्विक,शान्त, भोगरहित जीवन तथा प्रकृति के साहचर्य में निवास का विधान किया गया | छान्दोग्य उपनिषद् मे धर्म के जिन तीन स्कन्धों का उल्लेख हुआ है-यज्ञ,तप तथा श्रम¹⁶ उनसे यह सर्वथा सुस्पष्ट है कि शिक्षा में प्रकृति, परिवेश का सन्तुलित सामञ्जस्य ही मानव को मानव-धर्म सिखा सकता है| इसलिए उपनिषदों की शिक्षा किसी वर्ग जाति,काल या देश की सिमाओं से संकुचित नहीं की जा सकती, वह सार्वभौम मानवता को आत्मज्ञान का सन्देश है जिसकी आज के भौतिकवादी युग में अधिक अपेक्षा है | कठोनिषद् के शान्तिपाठ¹⁷ में सामाजिक असमानता की कुरीतियों से निकलकर गुरु शिष्य एवं छात्रों में समाज को जो एक समन्वय की भावना का सहभाव रूप से सब साथ मिलकर जातिगत एवं वैमनस्य भावना को त्याग कर प्रकृति के सुरम्य वातावरण में अध्ययन करते थे |

उपनिषदकारों की दृष्टि में मानव-व्यक्तित्व के पांच स्तर या कोश हैं- शरीर,प्राण,मन,बुद्धि एवं आत्मा¹⁸ अतः सर्वाङ्गीण एवं समग्र शिक्षा वही कही जा सकती है जो इन पांचों के परिष्कार एवं विकास का पथ प्रशस्त करे | यदि शिक्षा केवल मानसिक एवं बौद्धिक उत्थान करेगी तो अधूरी रहेगी, किन्तु आज शिक्षा का अर्थ मात्र साक्षरता है, अतः एक ओर तो साक्षरता के बढ़ते हुए आंकड़े देखकर हम भ्रमित होते हैं किन्तु दूसरी ओर भ्रष्ट एवं अनैतिक जनों की समाज में प्रगति देखकर चकित भी होते हैं | शिक्षा को अनिवार्य, सर्वजनसुलभ तथा सस्ता बनाकर हम मनुष्यों को अक्षरज्ञान तो करा सकते हैं और शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता नहीं सिखा सकती वह नैतिक शिक्षा कदापि नहीं होव सकती | नैतिक शिक्षा का प्रयोजन मानव-जीवन के पांच स्तरों को व्यवस्थित करके उसे एक श्रेष्ठ और सदाचारी मानव बनाना है | उपनिषद् शिक्षा का लक्ष्य भी प्रत्येक व्यक्ति को सत्य का उपासक तथा सच्चा और स्वस्थ नागरिक बनाना ही रहा है जैसा कि छान्दोग्योपनिषद् के श्वेतकेतु संवाद से संकेतित होता है-वहां कहा गया है कि शिक्षा का उद्देश्य ग्रन्थों को मस्तिष्क के कोष्ठ में भरकर रखना नहीं है, अपितु उनसे ज्ञान प्राप्त करना है |¹⁹

शिक्षा का उद्देश्य ऐसे शिक्षार्थियों का निर्माण करना है जो मानव-समाज में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर सकें क्योंकि शिक्षा 'अर्थवती' होनी चाहिए केवल 'अर्थकरी' नहीं | मनुष्य की इतिकर्तव्यता केवल ज्ञान के अर्जन

13 कठोनिषद् 2 /25

14 तपः श्रद्धये ह्युपवसन्त्यरप्ये शान्ता विद्वान्सो भैक्ष्यचर्या चरन्तः | मुण्डकोपनिषद् 1/2/1

15 प्रश्नोपनिषद् 1/10

16 छान्दोग्य 2/23/1

17 सह ना ववतु सह नौ भुनक्तौ | सहवीर्यं करवावहे | तेजस्विनावधीतमस्तु | माविद्विषावहे | कठोनिषद्

18 सर्वोपनिषत्सार

19 छान्दोग्योपनिषद् 6/1/2-3

में नहीं है, मनुष्य-जीवन मात्र अस्तित्व नहीं है, उसका एक विशिष्ट प्रयोजन है और वह है "आत्मज्ञान"। अतः सच्ची शिक्षा आत्मज्ञान न करा सके, आगे बढ़ने की प्रेरणा न दे सके, मनुष्य के जीवन को स्पर्श न करे-वह नैतिक शिक्षा नहीं हो सकती। छान्दोग्योपनिषद् में जब नारद सनत्कुमार से कहते हैं कि उन्होंने वेद, पुराण, विज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, भूतविद्या, नक्षत्रविद्या, ललितविद्या तथा ब्रह्मविद्या आदि सब पढ़ लिए हैं, वे "मन्त्रवित" बन चुके हैं किन्तु "आत्मवित" नहीं²⁰ तब उनका यही अभिप्राय है कि उनके पास पुस्तकीय ज्ञान तो बहुत है किन्तु आत्मज्ञान यानि वैयक्तिक शक्तियों के विकास की विद्या नहीं है। अतः वर्तमान काल में नैतिक शिक्षा का प्रश्न अतीव प्रासंगिक है जिससे व्यक्ति आत्मोत्थान से अपना विकास कर सके। अतः उपनिषद् कालीन शिक्षा में व्यक्ति के आत्मिक, बौद्धिक, सामाजिक विकास के सतः सार्वभौमिक विकास पर बल दिया जाता था जिसे हम निम्नवत तथ्यों के द्वारा उद्घाटित कर सकते हैं –

तर्क प्रधान शिक्षा - उपनिषद् तर्क प्रधान ग्रन्थ है। वैदिक ऋषियों की बौद्धिक शक्ति की पराकाष्ठा उन्हीं के द्वारा प्रकाश में आयी है। उपनिषदों के तर्क का अपना मौलिक आधार है। यः तर्क दो दो परस्पर विरोधी तत्वों को लेकर उपस्थित किया गया है। इस तर्क के आधार पर क्षर-अक्षर, नित्य-अनित्य, श्रेय-प्रेय, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, सत्-असत्, चेतन-अचेतन, जीवात्मा-परमात्मा और ब्रह्म उपनिषदों में इस प्रकार के तर्क द्वारा वस्तु की यथार्थता का दिग्दर्शन कराने का कारण भी विद्यमान है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय को स्पष्ट करने के लिए सहज एवं सरल उपाय या उत्तर नहीं है। ये प्रश्न बड़े जटिल हैं और उनकी मीमांसा बिना तर्क बुद्धि के सम्भव नहीं हैं। आधुनिक मनोविज्ञान विचारक इस तर्क पद्धति को अपना शिक्षण पद्धति मानते हैं। इससे छात्रों में तर्क शक्ति एवं बुद्धि विकास में अहं सहयोग मिलता था।

प्रश्नोत्तर- प्राचीनकाल में ओंकार शब्द के उच्चारण के बाद पाठ पढ़ाना आरम्भ किया जाता था। ये पाठ को प्रश्नोत्तर विधि से पढ़ाया करते थे। प्रत्येक इस प्रकार सम्पूर्ण व्याख्यान समाप्त होता था। कभी-कभी कुछ प्रश्नों का विस्तृत उत्तर न देकर केवल संकेत कर दिया करते थे। छात्र उनके आधार पर सही उत्तर ढूँढने का प्रयत्न करते थे। इस पद्धति से जिज्ञासु छात्र सक्रिय होते थे। स्वचिंतन, तर्क व निरीक्षण शक्ति के विकास पर बल दिया जाता था। जिसे आधुनिक विचार धारक मनोवैज्ञानिक इस पद्धति का सुकरात एवं बुडवर्थ को जन्म दाता मानते हैं।

वादविवाद- पाठशाला विधि में वाद-विवाद विधि को भी प्रयोग में लाया जाता था। प्राक्कथन अर्थात् तत्स्थलीय, बिना पूर्व तैयारी के कुछ कहना, भाषण अर्थात् व्याख्या करना, सम्यक् अवबोध अर्थात् ज्ञान

²⁰ सोऽहं भगवो मंत्रविदोवास्मि नात्मवित्। छान्दोग्योपनिषद् 7/1/3

प्रदर्शन विमति अथवा विप्रलाप-विभिन्न मतों की अभिव्यक्ति आदि शब्दों का भी पाणिनी ने उस समय प्रयोग किया है। इन सभी शब्दों से विभिन्न शैक्षिक विधियों का आभास मिलता है। ये सभी शब्द वाद-विवाद के प्रतीक हैं। शास्त्रार्थ व संवाद इसी के उदाहरण हैं। इससे छात्रों में भाव प्रकाशन की शक्ति बढ़ती है।

मूल्यांकन- शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व कतिपय उद्देश्यों का निर्धारण करता है। उन उद्देश्यों की प्राप्ति तथा छात्रों में रहे व्यवहारगत परिवर्तन की उपलब्धि की जाँच वह दो प्रकार से करता है। प्रथम पाठान्तरगत द्वितीय-पाठोपरान्त। मूल्यांकन द्वारा ही छात्रों की विषयगत कठिनाईयों का पता चलता है। उसने कितनी योग्यता अर्जित की है? ज्ञान, कौशल, अभिरुचि एवं अभिवृत्ति की दृष्टि से उसकी क्या प्रगति हुई है? भावी शिक्षा के लिए क्या आधारभूमि तैयार हुई है? और इन सबके फलस्वरूप उसमें क्या व्यावहारिक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं? इन सब प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करने हेतु मूल्यांकन की यह सतत प्रक्रिया चलती रहती है।

सह शैक्षिक गतिविधियाँ

गुरुकुल- शिक्षा में परिवेश को महत्त्व देने के कारण ही वैदिक ऋषि-मुनियों ने गुरुकुल-पद्धति का आविष्कार किया था गुरुकुल आधारित शिक्षा-प्रणाली केवल पुस्तकीय ज्ञान पर बल नहीं देती अपितु उसमें व्यावहारिक आदर्श और चरित्र-निर्माण समान रूप से महत्वपूर्ण माने गये थे। वहाँ प्रत्येक शिक्षार्थी को बिना किसी भेदभाव के सामाजिक समानता तथा शारीरिक श्रम की शिक्षा दी जाती थी। यहीं समाजवाद को आधारशिला प्रतिष्ठित थी। इस प्रकार गुरुकुल-पद्धति में प्रकृति के सतत साहचर्य में अपने परिवेश के प्रति जागरूक रहकर जो शिक्षा अर्जित की जाती थी वह शिक्षार्थी को कष्टसहिष्णु, संयमी, उदार एवं परिश्रमी तो बनाती ही थी उसके अन्तस् में प्राणीमात्र कर प्रति दया की भावना जगाती थी।

उपसंहार

निष्कर्षतः उपनिषद् वाङ्मय तथा जिस संस्कृत वाणी में ऐसा शाश्वत, सार्वभौम एवं पावन ज्ञान सन्निहित है उसकी आज की शिक्षा-प्रणाली में घोर उपेक्षा हो रही है। यही कारण है कि आज शिक्षा के अवसर एवं शिक्षित जनों की संख्या में वृद्धि होने पर भी उसमें हमारे चिन्तन की गूँज नहीं है, हमारी परम्परा की पकड़ नहीं है और मानवता का मान नहीं है। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति जीवन के प्रति असन्तुष्ट है और अपनी-अपनी परिस्थितियों के साथ स्वयं को समायोजित कर पाने में अक्षम है। वस्तुतः सत्य का ज्ञान कराने वाली वर्तमान शिक्षा प्रणाली से प्राप्त होने वाली शिक्षा “मुक्तये” न होकर “भुक्तये” हो गई है। अतः आज महती आवश्यकता है कि हम अपने देश की विपुल मेधा का समुचित विकास करने हेतु संस्कृत एवं संस्कृति

को शिक्षा पद्धति में सम्मनित स्थान दें तथा उन महनीय ऋषियों की अन्तः प्रज्ञा एवं तपः पूत जीवन शैली से शिक्षा के सूत्र संकेतों को ग्रहण कर वर्तमान में पुनः उनकी प्रतिष्ठा का प्रयास करें।

सन्दर्भ :

1. केनोपनिषद्, सानुवाद, शां, भाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1985
2. कठोपनिषद्, व्याख्याकार, डा. आद्या प्रसाद मिश्र, अक्षयवट, प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995
3. छान्दोग्योपनिषद्, सानुवाद, शां, भाष्यसहित, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1968
4. तैत्तिरीयोपनिषद्, सं. विष्णु वामन बापट शास्त्री, पुणे, 1924
5. प्रश्नोपनिषद्, अनु. स्वामी स्वयम्प्रकाश गिरि, दक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन, वाराणसी, 1990
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, (सटीक) अनु. रायबहादुर बाबू जालिम सिंह, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1923
7. मुण्डकोपनिषद्, अनु. स्वामी स्वयम्प्रकाश गिरि, दक्षिणामूर्ति मठ प्रकाशन, वाराणसी, 1990
8. विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1990
9. सर्वोपनिषदसार, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1986
10. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, उत्तरप्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997
11. श्वेताश्वतरोपनिषदसार, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1985